गजासुर की कथा

दारिद्र्य दहन शिवस्तोत्र के दूसरे श्लोक में भगवान् शिव को गजराज विमर्दनाय कहकर स्तुति की गई है। इस प्रकार से स्तुति गजासुर का वध करने के कारण की गई है। उसी गजासुर की कथा प्रस्तुत है।

(सन्दर्भ - शिवपुराण, रुद्रसंहिता, युद्धखण्ड, अध्याय 57)

अथ सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

महिषासुरके पुत्र गजासुरकी तपस्या तथा ब्रह्माद्वारा वरप्राप्ति, उन्मत्त गजासुरद्वारा अत्याचार, उसका काशीमें आना, देवताओंद्वारा भगवान् शिवसे उसके वधकी प्रार्थना, शिवद्वारा उसका वध और उसकी प्रार्थनासे उसका चर्म धारणकर 'कृत्तिवासा' नामसे विख्यात होना एवं कृत्तिवासेश्वर लिंगकी स्थापना करना

सनत्कुमार उवाच

श्रृणु व्यास महाप्रेम्णा चरितं शशिमौलिनः।
यथाऽवधीत् त्रिशूलेन दानवेन्द्रं गजासुरम्॥ १
दानवे निहते देव्या समरे महिषासुरे।
देवानां च हितार्थाय पुरा देवाः सुखं ययुः॥ २
तस्य पुत्रो महावीरो मुनीश्वर गजासुरः।
पितुर्वधं हि संस्मृत्य कृतं देव्या सुरार्थनात्॥ ३
स तद्वैरमनुस्मृत्य तपोऽर्थं गतवान् वने।
समुद्दिश्य विधिं प्रीत्या ततापपरमं तपः॥ ४
अवध्योऽहं भविष्यामि स्त्रीपुंसैः कामनिर्जितैः।
संविचार्येति मनसाऽभूत्तपोरतमानसः॥ ५
स तेपे हिमवद् द्रोण्यां तपः परमदारुणम्।
ऊर्ध्वबाहुर्नभोदृष्टिः पादांगुष्ठाश्रितावनिः॥ ६

जटाभारैः स वै रेजे प्रलयार्क इवांशुभिः।
महिषासुरपुत्रोऽसौ गजासुर उदारधीः॥ ७

सनत्कुमार बोले—हे व्यासजी! शिवजीके [उस] चरित्रको अत्यन्त प्रेमसे सुनिये, जिस प्रकार महादेवने दानवेन्द्र गजासुरको त्रिशूलसे मारा। पूर्वकालमें देवगणोंके हितके लिये युद्धमें देवीके द्वारा दानव महिषासुरका वध कर दिये जानेपर देवता सुखी हो गये॥ १-२॥

हे मुनीश्वर! देवताओंकी प्रार्थनासे देवीद्वारा किये गये अपने पिताके वधका स्मरण करके महावीर गजासुर, उस वैरका स्मरणकर तप करनेहेतु वनमें गया और ब्रह्माजीको उद्देश्य करके प्रीतिपूर्वक कठोर तप करने लगा॥ ३-४॥

'मैं कामके वशीभूत स्त्री तथा पुरुषोंसे अवध्य होऊँ'—इस प्रकार मनमें विचारकर वह तपमें दत्तचित्त हो गया। वह हिमालय पर्वतकी गुफामें भुजाओंको उठाकर आकाशमें दृष्टि लगाये हुए पैरके अँगूठेसे पृथ्वीको टेककर परम दारुण तप करने लगा॥ ५-६॥

वह उदार बुद्धिवाला महिषासुरपुत्र गजासुर जटाओंके भारकी कान्तिसे प्रलयके सूर्यके समान प्रकाशित हो रहा था। उसके मस्तकसे उत्पन्न हुई

तस्य मूर्ध्नः समुद्भूतः सधूमोऽग्निस्तपोमयः।
तिर्यगूर्ध्वमधोलोकांस्तापयन्विष्वगीरितः ॥ ८

चुक्षुभुर्नद्युदन्वंतश्चाग्नेर्मूर्द्धसमुद्भवात् ।
निपेतुः सग्रहास्तारा जज्ज्वलुश्च दिशो दश॥ ९

तेन तप्ताः सुराः सर्वे दिवं त्यक्त्वा सवासवाः।
ब्रह्मलोकं ययुर्विज्ञापयामासुश्चचाल भूः॥ १०

तपोमय धूमाग्नि तिरछे, ऊपर तथा नीचेके लोकोंको तप्त करती हुई चारों ओर फैल गयी। उसके मस्तकसे प्रकट हुई अग्निसे नदी तथा समुद्र सूख गये, ग्रहोंसहित तारे गिरने लगे तथा दसों दिशाएँ प्रज्वलित हो गयीं॥ ७—९॥

उस अग्निसे तप्त हुए इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता स्वर्गलोकको त्यागकर ब्रह्मलोकको गये और ब्रह्माजीसे बोले कि पृथ्वी चलायमान हो रही है॥ १०॥

देवा ऊचुः

विधे गजासुरतपस्तप्ता वयमथाकुलाः।
न शक्नुमो दिवि स्थातुमतस्ते शरणं गताः॥ ११

विधे ह्युपशमं तस्य चान्याञ्जीवयितुं कृथा।
लोका नंक्ष्यत्यन्यथा हि सत्यं सत्यं ब्रुवामहे॥ १२

इति विज्ञापितो देवैर्वासवाद्यैः स आत्मभूः।
भृगुदक्षादिभिर्ब्रह्मा ययौ दैत्यवराश्रमम्॥ १३

तपन्तं तपसा लोकान् यथाऽभ्रापिहितं दिवि।
विलक्ष्य विस्मितः प्राह विहसन्सृष्टिकारकः॥ १४

देवगण बोले—हे विधे! गजासुरके तपसे हमलोग सन्तप्त तथा व्याकुल हैं और स्वर्गमें स्थित रहनेमें समर्थ नहीं हैं, इसलिये आपकी शरणमें आये हैं। हे ब्रह्मन्! आप कृपाकर अन्य लोगोंको जीवित रखनेके लिये उस दैत्यको शान्त कीजिये, अन्यथा सभी लोग नष्ट हो जायँगे। हमलोग सत्य-सत्य कह रहे हैं। इस प्रकार इन्द्र आदि देवों तथा भृगु, दक्ष आदिसे प्रार्थित हुए ब्रह्माजी उस दैत्येन्द्रके आश्रमपर गये। आकाशमें मेघोंसे ढँके हुए सूर्यके समान लोकोंको तपाते हुए उसको देखकर विस्मित हो ब्रह्माजीने हँसते हुए कहा—॥ ११—१४॥

ब्रह्मोवाच

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ दैत्येन्द्र तपः सिद्धोऽसि माहिषे।
प्राप्तोऽहं वरदस्तात वरं वृणु यथेप्सितम्॥ १५

ब्रह्माजी बोले—हे दैत्येन्द्र! हे महिषपुत्र! हे तात! उठो, उठो, तुम्हारा तप सिद्ध हुआ, मैं तुम्हें वर देनेके लिये आया हूँ, अपनी इच्छाके अनुकूल वर माँगो॥ १५॥

सनत्कुमार उवाच

उत्थायोत्थाय दैत्येन्द्र ईक्षमाणो दृशा विभुम्।
गिरा गद्गदया प्रीतोऽगृणाद्देवं स माहिषिः॥ १६

सनत्कुमार बोले—उस दैत्येन्द्र गजासुरने उठकर अपने नेत्रोंसे विभु ब्रह्माजीको देखते हुए प्रसन्न होकर वर माँगनेके लिये गद्गद वाणीसे कहा—॥ १६॥

गजासुर उवाच

नमस्ते देवदेवेश यदि दास्यसि मे वरम्।
अवध्योऽहं भवेयं वै स्त्रीपुंसैः कामनिर्जितैः॥ १७

महाबलो महावीर्योऽजेयो देवादिभिः सदा।
सर्वेषां लोकपालानां निखिलर्द्धिसुभुग्विभो॥ १८

गजासुर बोला—हे देवदेवेश! आपको नमस्कार है, यदि आप मुझे वर दे रहे हैं, तो मैं कामके वशीभूत स्त्री-पुरुषोंसे अवध्य हो जाऊँ। हे विभो! मैं महाबलवान्, वीर्यवान् तथा देवता आदिसे सदा अजेय और सम्पूर्ण लोकपालोंकी समस्त सम्पत्तिको भोगनेवाला होऊँ॥ १७-१८॥

सनत्कुमार उवाच

एवं वृतः शतधृतिर्दानवेन स तेन वै।
प्रादात्तत्तपसा प्रीतो वरं तस्य सुदुर्लभम्॥ १९
एवं लब्धवरो दैत्यो माहिषिश्च गजासुरः।
सुप्रसन्नमनाः सोऽथ स्वधाम प्रत्यपद्यत॥ २०

सनत्कुमार बोले—इस प्रकार उस दैत्यके वर माँगनेपर उसके तपसे प्रसन्न हुए ब्रह्माजीने उसे अति दुर्लभ वरदान दिया॥ १९॥

इस प्रकार वह महिषासुरपुत्र गजासुर वर पाकर अति प्रसन्नचित्त होकर अपने स्थानको चला गया॥ २०॥

स विजित्य दिशः सर्वा लोकांश्च त्रीन्महासुरः।
देवासुरमनुष्येन्द्रान् गंधर्वगरुडोरगान्॥ २१
इत्यादीन्निखिलाञ्जित्वा वशमानीय विश्वजित्।
जहार लोकपालानां स्थानानि सह तेजसा॥ २२
देवोद्यानश्रियाजुष्टमध्यास्ते स्म त्रिविष्टपम्।
महेन्द्रभवनं साक्षान्निर्मितं विश्वकर्मणा॥ २३
तस्मिन्महेन्द्रस्य गृहे महाबलो
महामना निर्जितलोक एकराट्।
रेमेऽभिवंद्यांघ्रियुगः सुरादिभिः
प्रतापितैरूर्जितचंडशासनः॥ २४
स इत्थं निर्जितककुबेकराड् विषयान्प्रियान्।
यथोपजोषं भुंजानो नातृप्यदजितेन्द्रियः॥ २५
एवमैश्वर्यमत्तस्य दृप्तस्योच्छास्त्रवर्तिनः।
काले व्यतीते महति पापबुद्धिरभूत्ततः॥ २६
महिषासुरपुत्रोऽसौ संचिक्लेश द्विजान्वरान्।
तापसान्नितरां पृथ्व्यां दानवः सुरमर्दनः॥ २७
सुरान्नरांश्च प्रमथान्सर्वांश्चिक्लेशदुर्मतिः।
धर्मान्वितान्विशेषेण पूर्ववैरमनुस्मरन्॥ २८
एकस्मिन्समये तात दानवोऽसौ महाबलः।
अगच्छद्राजधानीं वै शंकरस्य गजासुरः॥ २९
समागतेऽसुरेन्द्रे हि महान्कलकलो मुने।
त्रात त्रातेति तत्रासीदानंदवनवासिनाम्॥ ३०
महिषाऽसुरपुत्रोऽसौ यदा पुर्यां समागतः।
प्रमथन्प्रमथान्सर्वान्निजवीर्यमदोद्धतः॥ ३१
तस्मिन्नवसरे देवाः शक्राद्यास्तत्पराजिताः।
शिवस्य शरणं जग्मुर्नत्वा तुष्टुवुरादरात्॥ ३२
न्यवेदयन्दानवस्य तस्य काश्यां समागमम्।
क्लेशाधिक्यं तत्रत्यानां तन्नाथानां विशेषतः॥ ३३

देवा ऊचुः

देवदेव महादेव तव पुर्य्यां गतोऽसुरः।
कष्टं दत्ते त्वज्जनानां तं जहि त्वं कृपानिधे॥ ३४
यत्र यत्र धरायां च चरणं प्रमिणोति हि।
अचलां सचलां तत्र करोति निज भारतः॥ ३५
ऊरुवेगेन तरवः पतन्ति शिखरैः सह।

तदुपरान्त सम्पूर्ण दिशाओं तथा तीनों लोकोंको जीतकर एवं देवता, असुर, मनुष्य, इन्द्र, गन्धर्व, गरुड और सर्प आदिको भी जीतकर उन्हें अपने वशमें करके संसारको जीतनेवाले उस दैत्यने तेजसहित लोकपालोंके स्थानोंका हरण कर लिया। देवोद्यानकी शोभासे युक्त साक्षात् विश्वकर्माद्वारा निर्मित किये गये स्वर्गस्थित महेन्द्रगृहमें वह निवास करने लगा॥ २१—२३॥

महाबली, महामना तथा लोकोंको जीतनेवाला और कठोर शासनवाला वह दैत्य पीड़ित हुए देवताओंसे अपने दोनों चरणोंमें प्रणाम कराते हुए महेन्द्रके उस घरमें विहार करने लगा। इस प्रकार जीती हुई दिशाओंका एकमात्र स्वामी अजितेन्द्रिय वह दैत्य प्रिय विषयोंको लोलुपतासे भोगता हुआ तृप्त न हुआ॥ २४-२५॥

इस प्रकार ऐश्वर्यसे उन्मत्त, अहंकारी तथा शास्त्रोंका उल्लंघन करनेवाले उस दैत्यको बहुत समय बीत जानेपर पापबुद्धि उदित हुई। देवगणोंको पीड़ा देनेवाला महिषासुरका वह पुत्र पृथ्वीपर श्रेष्ठ ब्राह्मणों तथा तपस्वियोंको अत्यधिक क्लेश देने लगा॥ २६-२७॥

वह दुष्टबुद्धि दैत्य पहलेके वैरभावका स्मरण करता हुआ देवताओं तथा सभी प्रमथोंको और विशेषकर धर्मात्माओंको अति कष्ट देने लगा। हे तात! एक समय वह महाबली दैत्य गजासुर शिवजीकी राजधानी काशीको गया। हे मुने! उस समय दैत्येन्द्रके आनेपर आनन्दवनमें निवास करनेवालोंका 'रक्षा करो, रक्षा करो' इस प्रकारका महाशब्द होने लगा॥ २८—३०॥

जिस समय अपने वीर्य और मदसे उन्मत्त हुआ महिषासुरका पुत्र सभी प्रमथोंको पीड़ित करता हुआ नगरीमें आया, उसी समय गजासुरसे पराजित हुए इन्द्रादि सब देवता शिवजीकी शरणमें गये और आदरसे प्रणामकर उनकी स्तुति करने लगे। उन्होंने काशीमें उस दैत्यके आगमन तथा विशेषकर वहाँ रहनेवाले शिवभक्तोंका अति दुःख भी निवेदन किया॥ ३१—३३॥

देवगण बोले—हे देवदेव! हे महादेव! आपकी नगरीमें आया हुआ दैत्य गजासुर आपके भक्तजनोंको कष्ट दे रहा है, अतः हे कृपानिधे! आप उसका वध करें॥ ३४॥

वह भूमिपर जहाँ-जहाँ चरण रखता है, वहाँ उसके भारसे अचल पृथ्वी भी चलायमान हो जाती है। उसकी जंघाके वेगसे डालियोंसहित वृक्ष गिरने

यस्य दोर्दंडघातेन चूर्णाः स्युश्च शिलोच्चयाः ॥ ३६
यस्य मौलिजसंघर्षाद् घना व्योम त्यजन्त्यपि।
नीलिमानं न चाद्यापि जहयुस्तत्केशसंगजम् ॥ ३७
यस्य निश्वाससंभारैरुत्तरंगा महाब्धयः।
नद्योऽप्यमन्दकल्लोला भवंति तिमिभिः सह ॥ ३८
योजनानां सहस्राणि नव यस्य समुच्छ्रयः।
तावानेव हि विस्तारः तनोर्मायाविनोऽस्य हि ॥ ३९
यन्नेत्रयोः पिंगलिमा तथा तरलिमा पुनः।
विद्युताः नोह्यतेऽद्यापि सोऽयं स्माऽऽयाति सत्वरम् ॥ ४०
यां यां दिशं समभ्येति सोऽयं दुःसहदानवः।
अवध्योऽहं भवामीति स्त्रीपुंसैः कामनिर्जितैः ॥ ४१
इत्येवं चेष्टितं तस्य दानवस्य निवेदितम्।
रक्षस्व भक्तान्देवेश काशीरक्षणतत्पर ॥ ४२

सनत्कुमार उवाच

इति संप्रार्थितो देवैर्भक्तरक्षणतत्परः।
तत्राऽऽजगाम सोरं तद्वधकामनया हरः ॥ ४३
आगतं तं समालोक्य शंकरं भक्तवत्सलम्।
त्रिशूलहस्तं गर्जन्तं जगर्ज स गजासुरः ॥ ४४
ततस्तयोर्महानासीत्समरो दारुणोऽद्भुतः।
नानास्त्रशस्त्रसंपातैर्वीरारावं प्रकुर्वतोः ॥ ४५
गजासुरोऽतितेजस्वी महाबलपराक्रमः।
विव्याध गिरिशं बाणैस्तीक्ष्णैर्दानवघातिनम् ॥ ४६
अथ रुद्रो रौद्रतनुः स्वशरैरतिदारुणैः।
तच्छरांश्चिच्छिदे तूर्णमप्राप्तांस्तिलशो मुने ॥ ४७
ततो गजासुरः क्रुद्धोऽभ्यधावत्तं महेश्वरम्।
खड्गहस्तः प्रगर्ज्योच्चैर्हतोऽसीत्यद्य वै मया ॥ ४८
ततस्त्रिशूलहेतिस्तमायान्तं दैत्यपुंगवम्।
विज्ञायावध्यमन्येन शूलेनाभिजघान तम् ॥ ४९
प्रोतस्तेन त्रिशूलेन स च दैत्यो गजासुरः।
छत्रीकृतमिवात्मानं मन्यमानो जगौ हरम् ॥ ५०

लगते हैं। उसके भुजदण्डके आघातसे शिखरोंसहित पर्वत चूर्ण हो जाते हैं, उसके मुकुटके संघर्षसे मेघ आकाशका त्याग करते हैं और उसके बालोंके सम्पर्कसे उत्पन्न हुए नीलेपनको वे अबतक भी नहीं छोड़ते। जिसके निःश्वासके भारोंसे ऊँची तरंगोंवाले महासागर तथा नदियाँ भी जलजन्तुओंके सहित बड़ा कल्लोल करती हैं, जिसके शरीरकी ऊँचाई उसकी मायासे नौ सहस्र योजन हो जाती है तथा मायावी उस दैत्यका विस्तार (चौड़ाईका घेरा) भी उतना ही हो जाता है, जिसके नेत्रोंके पीलेपन और चांचल्यको बिजली आज भी नहीं धारण कर सकती है, वही बड़े वेगसे यहाँ आ गया है ॥ ३५—४० ॥

वह असह्य दैत्य जिस-जिस दिशामें जाता है, 'कामसे जीते हुए स्त्री-पुरुषोंसे मैं अवध्य हूँ', इस प्रकार वहाँ कहता है। काशीकी रक्षामें तत्पर रहनेवाले हे देवेश! इस प्रकार हम लोगोंने उस दैत्यकी चेष्टाका आपसे निवेदन किया, आप भक्तोंकी रक्षा कीजिये ॥ ४१-४२ ॥

सनत्कुमार बोले—देवताओंद्वारा इस प्रकार प्रार्थना किये जानेपर भक्तोंकी रक्षामें तत्पर वे शिवजी उसके वधकी कामनासे बड़ी शीघ्रतासे वहाँ आये ॥ ४३ ॥

त्रिशूल हाथमें धारण किये हुए उन भक्तवत्सल शिवजीको गरजते हुए आया देखकर गजासुर गरजने लगा। तब वीरगर्जन करते हुए उन दोनोंका अनेक अस्त्रों तथा शस्त्रोंके प्रहारसे दारुण तथा अद्भुत युद्ध हुआ ॥ ४४-४५ ॥

अति तेजस्वी तथा महाबली गजासुरने दैत्योंका विनाश करनेवाले शिवजीपर तीव्र बाणोंसे प्रहार किया ॥ ४६ ॥

हे मुने! उस समय भयंकर शरीरवाले शिवजीने अपने अति दारुण बाणोंसे अपने समीप न पहुँचे हुए उसके बाणोंको शीघ्र ही खण्ड-खण्ड कर दिया ॥ ४७ ॥

तब हाथमें खड्ग लेकर 'अब तुम मेरे द्वारा मारे गये'—इस प्रकार ऊँचे स्वरसे गर्जनकर क्रोधित होकर गजासुर शिवजीकी ओर दौड़ा। तब त्रिशूलधारी भगवान् शिवने उस दैत्यश्रेष्ठको आता हुआ देखकर तथा अन्यके द्वारा अवध्य जानकर उसे त्रिशूलसे मारा। उस त्रिशूलसे विद्ध हुआ वह गजासुर दैत्य अपनेको शिवका छत्ररूप मानता हुआ शिवजीकी स्तुति करने लगा ॥ ४८—५० ॥

गजासुर उवाच

देवदेव महादेव तव भक्तोऽस्मि सर्वथा।
जाने त्वां त्रिदिवेशानं त्रिशूलिन्स्मरहारिणम्॥ ५१
तव हस्ते मम वधो महाश्रेयस्करो मतः।
अंधकारे महेशान त्रिपुरांतक सर्वग॥ ५२
किंचिद्विज्ञप्तुमिच्छामि तच्छृणुष्व कृपाकर।
सत्यं ब्रवीमि नासत्यं मृत्युंजय विचारय॥ ५३
त्वमेको जगतां वंद्यो विश्वस्योपरि संस्थितः।
कालेन सर्वैर्मर्तव्यं श्रेयसे मृत्युरीदृशः॥ ५४

सनत्कुमार उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य शंकरः करुणानिधिः।
प्रहस्य प्रत्युवाचेशो माहिषेयं गजासुरम्॥ ५५

ईश्वर उवाच

महापराक्रमनिधे दानवोत्तम सन्मते।
गजासुर प्रसन्नोऽस्मि स्वानुकूलं वरं वृणु॥ ५६

सनत्कुमार उवाच

इत्याकर्ण्य महेशस्य वचनं वरदस्य हि।
प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा दानवेन्द्रो गजासुरः॥ ५७

गजासुर उवाच

यदि प्रसन्नो दिग्वाससस्तदा नित्यं वसान मे।
इमां कृत्तिं महेशान त्वत्त्रिशूलाग्निपावितां॥ ५८
स्वप्रमाणां सुखस्पर्शां रणांगणपणीकृताम्।
दर्शनीयां महादिव्यां सर्वदैव सुखावहाम्॥ ५९
इष्टगंधिः सदैवास्तु सदैवास्त्वतिकोमला।
सदैव निर्मला चास्तु सदैवास्त्वतिमंडना॥ ६०
महातपोनलज्वालां प्राप्यापि सुचिरं विभो।
न दग्धा कृत्तिरेषा मे पुण्यगंधनिधेस्ततः॥ ६१
यदि पुण्यवती नैषा मम कृत्तिर्दिगंबर।
तदा त्वदंगसंगोस्याः कथं जातो रणांगणे॥ ६२
अन्यं च मे वरं देहि यदि तुष्टोऽसि शंकर।
नामास्तु कृत्तिवासास्ते प्रारभ्याद्यतनं दिनम्॥ ६३

सनत्कुमार उवाच

श्रुत्वेति स वचस्तस्य शंकरो भक्तवत्सलः।
तथेत्युवाच सुप्रीतो महिषासुरजं च तम्॥ ६४
पुनः प्रोवाच प्रीतात्मा दानवं तं गजासुरम्।
भक्तप्रियो महेशानो भक्तिनिर्मलमानसम्॥ ६५

गजासुर बोला—हे देवदेव! हे महादेव! मैं सब प्रकारसे आपका भक्त हूँ। हे त्रिशूलिन्! मैं कामदेवका नाश करनेवाले आप देवेशको जानता हूँ॥ ५१॥

हे अन्धकारे! हे महेशान! हे त्रिपुरान्तक! हे सर्वग! आपके हाथसे मेरा वध परम कल्याणकारी हुआ॥ ५२॥

हे कृपालो! हे मृत्युंजय! मैं कुछ निवेदन करना चाहता हूँ, उसे सुनिये, सत्य ही कहूँगा, असत्य नहीं, आप विचार कीजिये। एकमात्र आप संसारके वन्दनीय हैं तथा संसारके ऊपर स्थित हैं। समयसे सभीको मरना है, परंतु ऐसी मृत्यु कल्याणके निमित्त होती है॥ ५३-५४॥

सनत्कुमार बोले—उसका यह वचन सुनकर दयानिधि शिवजीने हँसकर महिषासुरके पुत्र गजासुरसे कहा—॥ ५५॥

ईश्वर बोले—हे महापराक्रमनिधे! हे दानवोत्तम! हे श्रेष्ठ मतिवाले! हे गजासुर! मैं प्रसन्न हूँ, अपने अनुकूल वर माँगो॥ ५६॥

सनत्कुमार बोले—वर देनेवाले शिवजीका यह वचन सुनकर दानवेन्द्र गजासुरने प्रसन्नचित्त होकर कहा—॥ ५७॥

गजासुर बोला—हे महेशान! हे दिगम्बर! यदि आप प्रसन्न हैं, तो अपने त्रिशूलकी अग्निसे पवित्र किये हुए मेरे इस देहचर्मको नित्य धारण कीजिये। अपने प्रमाणवाले, कोमल स्पर्शवाले, युद्धक्षेत्रमें समर्पित किये गये, देखनेयोग्य, महादिव्य, निरन्तर सुखदायक मेरे चर्मको धारण कीजिये। यह चर्म सदा सुगन्धयुक्त, अतिकोमल, निर्मल तथा अति शोभायमान हो॥ ५८—६०॥

हे विभो! तेज धूप तथा अग्निकी लपटको बहुत देरतक प्राप्त करके भी पवित्र सुगन्धनिधिके कारण मेरा यह देहचर्म भस्म न हो॥ ६१॥

हे दिगम्बर! यदि मेरा यह चर्म पुण्यमय नहीं होता, तो युद्धस्थलमें आपके अंगके साथ इसका संग कैसे होता। हे शिवजी! यदि आप प्रसन्न हैं, तो मुझे दूसरा वर दीजिये कि आजसे प्रारम्भकर आपका नाम कृत्तिवासा हो॥ ६२-६३॥

सनत्कुमार बोले—उसका यह वचन सुनकर भक्तप्रिय भक्तवत्सल महेशान शिवजी प्रसन्न होकर भक्तिसे निर्मल मनवाले उस गजासुर नामक दानवसे पुनः कहने लगे—॥ ६४-६५॥

ईश्वर उवाच

इदं पुण्यं शरीरं ते क्षेत्रेऽस्मिन्मुक्तिसाधने।
मम लिंगं भवत्वत्र सर्वेषां मुक्तिदायकम्॥ ६६
कृत्तिवासेश्वरं नाम महापातकनाशनम्।
सर्वेषामेव लिंगानां शिरोभूतं विमुक्तिदम्॥ ६७
कथयित्वेति देवेशस्तत्कृत्तिं परिगृह्य च।
गजासुरस्य महतीं प्रावृणोद्धि दिगंबरः॥ ६८

महामहोत्सवो जातस्तस्मिन्नह्नि मुनीश्वर।
हर्षमापुर्जनाः सर्वे काशीस्थाः प्रमथास्तथा॥ ६९
हरिब्रह्मादयो देवा हर्षनिर्भरमानसाः।
तुष्टुवुस्तं महेशानं नत्वा सांजलयस्ततः॥ ७०
हते तस्मिन्दानवेशे माहिषे हि गजासुरे।
स्वस्थानं भेजिरे देवा जगत्स्वास्थ्यमवाप च॥ ७१
इत्युक्तं चरितं शंभोर्भक्तवात्सल्यसूचकम्।
स्वर्ग्यं यशस्यमायुष्यं धनधान्यप्रवर्द्धनम्॥ ७२
य इदं शृणुयात्प्रीत्या श्रावयेद्वा शुचिव्रतः।
स भुक्त्वा च महासौख्यं लभेतान्ते परं सुखम्॥ ७३

ईश्वर बोले—मुक्तिके साधन इस क्षेत्रमें तुम्हारा यह पवित्र शरीर सभीके लिये मुक्तिदायक मेरा लिंग होगा। यह महापापोंका नाश करनेवाला, समस्त श्रेष्ठ लिंगोंमें प्रधान एवं मुक्तिको देनेवाला कृत्तिवासेश्वर नामक लिंग होगा॥ ६६-६७॥

इस प्रकार कहकर उन दिगम्बर देवेशने गजासुरके उस विस्तृत चर्मको लेकर उसे धारण कर लिया॥ ६८॥

हे मुनीश्वर! उस दिन बहुत बड़ा महोत्सव हुआ, काशीनिवासी सभी लोग तथा प्रमथगण प्रसन्न हो गये। उस समय हर्षपूर्ण मनवाले विष्णु, ब्रह्मा आदि देवताओंने हाथ जोड़कर शिवजीको नमस्कार करके उनकी स्तुति की। दानवोंके स्वामी महिषासुरपुत्र गजासुरके मार दिये जानेपर देवगणोंने अपने स्थानको प्राप्त कर लिया और संसार सुखी हो गया॥ ६९—७१॥

इस प्रकार भक्तोंके प्रति दयासूचक, स्वर्ग-कीर्ति एवं आयुको देनेवाले और धनधान्यको बढ़ानेवाले शिवचरित्रका वर्णन कर दिया गया। उत्तम व्रतवाला जो मनुष्य इसे प्रीतिसे सुनता है अथवा सुनाता है, वह महान् सुख पाकर अन्तमें मोक्षको प्राप्त करता है॥ ७२-७३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे गजासुरवधो नाम सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें गजासुरवधवर्णन नामक सत्तावनवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५७॥